इकाई 29 संवैधानिक सुधार :1921-1935

इकाई की रूपरेखा

29.0 उद्देश्य

इस इकाई का लक्ष्य 1920 से 1935 की अवधि में किए गये संवैधानिक सुधारों का संक्षिप्त सर्वेक्षण करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- जान सकेंगे कि किस प्रकार से स्वतंत्र भारत के संविधान के मूलभूत चरित्र (लोकतांत्रिक गणतंत्र तथा संसदीय प्रणाली पर आधारित) का धीरे-धीरे विकास हुआ,
- व्याख्या कर सकेंगे कि किस प्रकार से स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक सुधारों का विकास साथ-साथ हुआ और कैसे दोनों एक दूसरे के पूरक थे, और
- सांप्रदायिक तथा अल्पसंख्यक समस्या के समाधान में भारतीय जनता और उनके नेताओं के प्रयासों को समझ सकेंगे।

29.1 प्रस्तावना

इकाई 17, खण्ड-4 में आपने 1892-1920 के बीच हुए संवैधानिक सुधारों के बारे में पढ़ा है। इस इकाई में आपको 1920-1935 की अवधि के संवैधानिक विकास से परिचित कराने का प्रयास किया गया है। यहां हम 1919 के सुधार ऐक्ट के प्रभावों और साइमन कमीशन के गठन के कारणों का विश्लेषण करेंगे। साइमन कमीशन की नियुक्ति पर राष्ट्रवादियों की प्रतिक्रिया और नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों पर भी यहाँ चर्चा की गयी है। हमने गोलमेज़ कान्फ्रेंस के ज़रिये अंग्रेज़ सरकार द्वारा राष्ट्रवादियों से समझौता करने की कोशिशों को भी ध्यान में रखा है। हमने ब्रिटेन द्वारा समर्थित साम्प्रदायिक और अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व की उस चुनौती की भी चर्चा की है, जिससे निपटने के लिए राष्ट्रवादियों ने पूना समझौता स्वीकार किया। अन्त में भारत सरकार ऐक्ट, 1935 के मुख्य मुद्दों और उसकी सीमाओं पर प्रकाश डाला गया है।

29.2 1919 के संवैधानिक सुधारों का प्रभाव

1919 के संवैधानिक सुधारों के प्रभाव पर बहस करने से पहले हम भारत सरकार ऐक्ट, 1919 के मुख्य मुद्दों का संक्षिप्त आकलन करेंगे।

भारत सरकार ऐक्ट, 1919 के अन्तर्गत द्वैध शासन प्रणाली के द्वारा प्रादेशिक सरकारों को अधिक शक्तियां प्रदान की गयी थीं। वित्त, विधि और व्यवस्था जैसे कुछ विषयों को आरक्षित विषय माना गया और उन्हें राज्यपाल के प्रत्यक्ष नियंत्रण में बने रहने दिया गया। शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्थानीय स्व-शासन जैसे शेष विषयों को हस्तांतरित विषय का नाम दिया गया, और उन्हें विधायिका के लिए ज़िम्मेदार मंत्रियों के नियंत्रण में रखा गया। हालांकि व्यय करने वाले कुछ विभागों को हस्तांतरित किया गया था, फिर भी वित्त पर राज्यपाल का पूर्ण नियंत्रण क़ायम रहा। राज्यपाल मंत्रियों के निर्णयों को किसी भी आधार पर निरस्त कर सकता था, जो उसकी दृष्टि में विशेष थे। केन्द्रीय विधानमंडल का गवर्नर जनरल और उसकी कार्यकारिणी-परिषद पर कोई नियंत्रण नहीं था। दूसरी ओर केन्द्र सरकार का प्रादेशिक सरकारों पर निर्बाध नियंत्रण था।

29.2.1 द्वैध शासन की असफलता

द्वैध शासन व्यवहार में कभी लागू नहीं हो सका। द्वैध शासन की समग्र संकल्पना ही एक त्रुटिपूर्ण सिद्धांत पर टिकी हुई थी। शासकीय कार्यों को एकदम दो असम्बद्ध खानों में बांटना अतार्किक था। आरक्षित और हस्तांतरित विषयों में स्पष्ट अन्तर नहीं था। उदाहरण के लिए वित्त को आरक्षित विषय घोषित किया गया था लेकिन हस्तांतरित विभागों के लिए उसका बहुत महत्व था। मंत्रीगण अपने देशवासियों की भलाई का काम करना चाहते थे जबकि राज्यपाल, कार्यकारिणी परिषद के सदस्यगण और प्रशासकगण ब्रिटिश साम्राज्यवादी स्वार्थों को साधना चाहते थे। इसलिए मंत्रियों, कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों, राज्यपाल और प्रशासकों के हित कभी मिल नहीं पाते थे। मंत्रियों का अपने हस्तांतरित विभागों में काम करने वाले सरकारी नौकरों पर कोई नियंत्रण नहीं था। मंत्रीगण विधायिका के सामने जवाबदेह थे और राज्यपाल के अधीनस्थ थे, जो उन्हें नियुक्त और पदच्युत करता था। संगठित राजनीतिक दलों और स्थायी बहुमत के अभाव के कारण मंत्रियों में संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना नहीं थी। आरक्षित और हस्तांतरित विभागों के वित्तीय आबंटन में भेदभाव किया जाता था। इस मामले में आरक्षित विभागों के साथ पक्षपात होता था।

द्वैध शासन जनता को संसदीय शासन-प्रणाली का व्यावहारिक प्रशिक्षण देने में असफल रहा। संगठित राजनीतिक दलों के अभाव के कारण मतदाताओं और उनके प्रतिनिधियों के बीच सम्पर्क संभव नहीं था। विधानमंडल के सदस्य साम्प्रदायिक और स्थानीय मुद्दों पर बंटे हुए थे। वे न तो सरकार के समर्थक ही सिद्ध हो सके और न ही उसके रचनात्मक आलोचक बन सके। हस्तांतरित विभागों के कार्य से ऐसी कोई स्वस्थ परंपराएं नहीं बन सकीं जिसके ज़रिये संवैधानिक प्रगति संभव हो सकती। मंत्रियों विधायकों और मतदाताओं को वैसा कोई प्रशिक्षण भी नहीं मिल सका, जिससे वे बड़ी राजनीतिक ज़िम्मेदारियों को संभाल सकने में समर्थ हो सकते।

29.2.2 1920-1927 के बीच प्रस्तुत सुधार प्रस्ताव

भारत सरकार ऐक्ट, 1919 के सुधारों ने भारतीय राष्ट्रवादियों को बहुत निराश किया और इस तरह 1920-1921 के राष्ट्रवादी आंदोलन के विकास में मदद मिली। असहयोग आंदोलन की समाप्ति के बाद इस अवधि में एक राजनैतिक निर्वात पैदा हो गया जिसे स्वराजियों ने भरने का प्रयास किया। दूसरी ओर गांधीवादी परिवर्तन विरोधियों ने अपना पूरा ज़ोर गांवों के रचनात्मक कार्यों में लगाया।

1920 और साइमन कमीशन के गठन के बीच की अवधि में भारतीयों की ओर से संवैधानिक सुधार के कई प्रस्ताव रखे गये। केन्द्रीय विधानसभा में 1921 में एक ग़ैर-सरकारी प्रस्ताव

रखा गया। इस प्रस्ताव में प्रादेशिक स्तर पर पूर्णतः उत्तरदायी सरकार स्थापित करने की मांग की गयी थी। इसी तरह के दो और ग़ैर-सरकारी प्रस्ताव 1923 में रखे गये लेकिन उनका भी कोई परिणाम नहीं निकला।
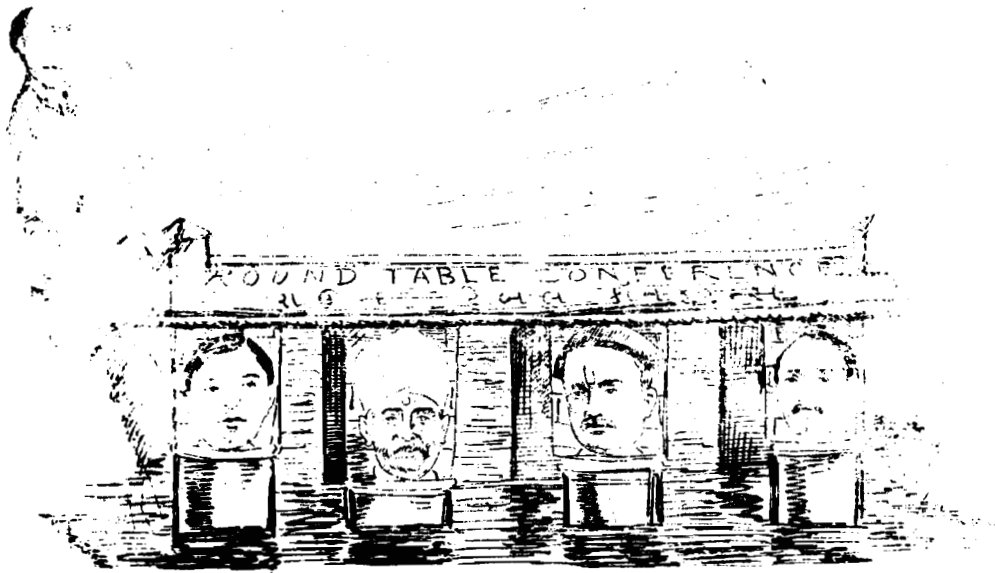
THE GOLDEN BRIDGE.

Will they walk forward and meet each other half way ?

[The Representative Conference which met in Bombay on the 14th and 15th January, [illegible] Round Table Conference between Government and the popular representatives to relieve the present tension in the country.]

સોનેરી પુલ.

[illegible]

चित्र 1. पंच में सुधारों पर छपा एक कार्टून (1922)

विधानपरिषद में प्रवेश करने के बाद स्वराजियों ने एक ग़ैर-सरकारी प्रस्ताव रखा। इसमें भारत सरकार ऐक्ट, 1919 में परिवर्तन करके भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर स्व-नियंत्रित (अधिराज्य) डोमीनियन स्टेटस बनाने और प्रदेशों में प्रादेशिक स्वायत्तता लागू करने की गवर्नर जनरल से मांग की। सरकार ने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। गृह-सदस्य सर मेल्कॉम हेली ने बताया कि 1919 के ऐक्ट की प्रस्तावना में उस उत्तरदायी सरकार की स्थापना का प्रस्ताव है, जिसमें कार्यपालिका सीमित शक्तियों वाली विधायिका के सामने जवाबदेह है लेकिन पूर्ण डामीनियन स्वशासन इस प्रक्रिया का अगला और अंतिम चरण ही हो सकता है।

मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में स्वराजियों ने 1924 में एक संशोधन प्रस्तुत किया। उन्होंने मांग की कि भारतीय संविधान-सभा के द्वारा भारतीय संविधान बनाया जाय। इसके उत्तर में सरकार में कार्यकारिणी परिषद के गृह-सचिव सर अलेक्ज़ेण्डर मुडीमैन की अध्यक्षता में एक सुधार जांच समिति का गठन किया। समिति ने बहुमत और अल्पमत रिपोर्ट प्रकाशित की। बहुमत रिपोर्ट में बताया गया था कि द्वैध शासन लागू नहीं हुआ है। अल्पमत रिपोर्ट के अनुसार 1919 का ऐक्ट असफल हो गया था। इस मसले पर शासकीय दृष्टिकोण था कि बहुमत रिपोर्ट के सुझावों को लागू करके 1919 के ऐक्ट को बेहतर बनाया जा सकता है। लेकिन मोतीलाल नेहरू अपने आरंभिक प्रस्ताव पर कायम रहे। उन्होंने मांग की कि अल्पसंख्यकों सहित सभी भारतीयों और एंग्लोइंडियन का प्रतिनिधित्व करने वालों की एक गोलमेज़ कान्फ्रेंस बुलायी जाय।

इसी समय एम. ए. जिन्ना की अध्यक्षता में मुस्लिम लीग का लाहौर में एक अधिवेशन हुआ। उसमें पूर्ण उत्तरदायी सरकार, पूर्ण प्रान्तीय स्वायत्तता वाले संघीय संविधान और पृथक निर्वाचन क्षेत्रों के ज़रिये अल्पसंख्यकों के लिए पर्याप्त प्रतिनिधित्व की मांग की गयी। जब राज्य-परिषद में पृथक निर्वाचन क्षेत्रों को समाप्त करने वाला एक प्रस्ताव रखा गया, तो मुस्लिम सदस्यों को महसूस हुआ कि पृथक निर्वाचन क्षेत्रों को समाप्त करने का अभी समय नहीं आया है। बाद में कुछ मुस्लिम सदस्य निम्नलिखित चार मांगों के पूरे होने की शर्त पर संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों को स्वीकार करने के लिए तैयार हुए :

Equal in Rank but Inferior in Status.

Dominions to Mother India :—Really, Happy, Venerable Mother India, to see that His Most Gracious Majesty has given You a glorious Equality in this Historic Empire Exhibition with us, the sheep rearing Australians, Wheatful Canadians and Ostrich-feathered S. Africans.

Baba Doodle :—Proud indeed the day when in pompous shows and proud Exhibitions Your Sacred Self is accorded Equality.

But, Your Britannic Majesty, it will be the proudest day when Mother India will have not only *Equality* with the *Dominions* in shows but also *Equality* in Status. Of what avail is *Equality* in shows or Leagues? Why not make Your Royal Name and Reign an imperishable one in the Indian minds by granting what *your* Premier has been bold enough to promise? That would raise a memorial more enduring than Your likeness in bronze or alabaster.

By the Courtesy of the "Doodle."

चित्र 2 इंडियन रिव्यू में सुधारों पर कार्टून (1924)

- सिन्ध को बम्बई प्रेसीडेंसी से अलग करने के बाद उसे एक अलग (मुस्लिम बहुमत) प्रदेश का दर्जा दिया जाय।
- उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत (एन० एफ० डब्लू० पी०) और बलूचिस्तान में दूसरे प्रदेशों की तरह सुधार किये जाने चाहियें।
- बंगाल और पंजाब में प्रतिनिधित्व का निर्धारण जनसंख्या के आधार पर किया जाय। (ताकि विधायिकाओं में मुस्लिम बहुमत बनाये रखा जा सके)।
- केन्द्रीय विधान मंडल में मुस्लिम प्रतिनिधित्व या तो कुल का एक-तिहाई या उससे अधिक हों।

जिन्ना ने इस मांग-पत्र को तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित करके मुस्लिमों की अधिकांश मांगों को मान लिया। इसी समय मुस्लिम लीग में विभाजन हो गया। मुस्लिम लीग का एक अलग वार्षिक अधिवेशन लाहौर में सर मियां मुहम्मद शफी की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। इस विभाजन से कांग्रेस और मुस्लिम लीग में मेलजोल न चाहने वाली ब्रिटिश नीति को फायदा पहुंचा। इस पृष्ठभूमि में अंग्रेज़ सरकार ने भारतीय स्थिति का अवलोकन करने का फैसला किया, ताकि भारतीय जनता में बढ़ रहे असंतोष पर लगाम लगायी जा सके। इसी के परिणामस्वरूप साइमन कमीशन का गठन किया गया।

29.3 साइमन कमीशन

1919 के ऐक्ट के अनुसार ऐक्ट के पारित होने के दस वर्ष बाद रायल कमीशन के गठन का प्रावधान था तथा जिसे सरकार के काम की जांच का दायित्व सौंपा जाना था। इस ऐक्ट के पीछे यह सिद्धान्त काम कर रहा था कि संवैधानिक विकास धीरे-धीरे होना चाहिए। लेकिन इस दृष्टिकोण में कई ख़ामियां थीं। एक अस्थायी संविधान होने के नाते इसको सफल बनाने में लोगों की अधिक दिलचस्पी नहीं हो सकती थी और जो लोग इससे असंतुष्ट थे, उन्होंने इसे अव्यावहारिक साबित करने की पूरी कोशिश की। सबसे अहम बात यह है कि किसी संविधान की जीवन्तता और व्यावहारिकता को परखने के लिए दस साल की अवधि बहुत कम होती है।

29.3.1 नियुक्ति

नवंबर, 1927 में भारत के राज्य सचिव लार्ड बिर्केनहेड ने सर जान साइमन की अध्यक्षता में एक वैधानिक कमीशन के गठन की घोषणा की।

कमीशन का उद्देश्य प्रान्तीय सरकारों के कार्यों की जांच करना, प्रतिनिधि संस्थाओं की कार्यप्रणाली की समीक्षा करना और भविष्य में उत्तरदायी सरकार की स्थापना में जो प्रगति हुई है, उसकी रूपरेखा तैयार करना था। भारत सरकार ऐक्ट, 1919 दो वर्ष बाद 1921 में लागू हुआ था। इस तरह कमीशन का गठन 1931 में होना चाहिए था। यह सवाल उठता है कि फिर इसे समय से पहले ही क्यों गठित कर दिया गया? अंग्रेज़ सरकार ने घोषणा की कि इस नियुक्ति के द्वारा वह भारत की समस्याओं पर उदारतापूर्वक विचार करना चाहती है, लेकिन वस्तुतः इसके कारण कुछ और थे। राष्ट्रवादियों ने नियतकालिक जांच पद्धति का विरोध किया और उन्होंने संवैधानिक व्यवस्था में पूर्ण संशोधन की मांग की।

ब्रिटेन की राजनीतिक स्थिति ने टोरी सरकार (अनुदार दल की सरकार) को विवश किया कि वह नवम्बर, 1927 में कमीशन की नियुक्ति करे। 1919 के ब्रिटेन के आगामी आम चुनाव में लेबर पार्टी के जीतने की संभावना थी। टोरी सरकार नहीं चाहती थी कि लेबर सरकार को भारत के संदर्भ में वैधानिक कमीशन नियुक्त करने का अवसर मिले।

- इसके अतिरिक्त टोरी सरकार ऐसे समय प्रतिनिधि मंडल भेजना चाहती थी जब भारत में सांप्रदायिक तनाव बहुत ज़्यादा हो, ताकि कमीशन को भारतवासियों की स्वशासन की क्षमता पर संदेह हो जाय।
- दूसरा कारण जैसा कि प्रोफेसर कीथ ने सुझाया है, कमीशन की नियुक्ति के पीछे एक ओर स्वराजवादियों और दूसरी ओर नेहरू और सुभाष के नेतृत्व में युवा गतिविधियों का दबाव भी काम कर रहा था।

कमीशन के सभी सातों सदस्य अंग्रेज़ थे और ब्रिटिश संसद के सदस्य भी थे। अंग्रेज़ सरकार ने कमीशन में किसी भारतीय को शामिल न किये जाने के फैसले के पक्ष में दो तर्क दिये।

i) उसने बताया, चूंकि कमीशन को अपना प्रतिवेदन ब्रिटिश संसद के सम्मुख प्रस्तुत करना था इसलिए कमीशन में केवल अंग्रेज़ सदस्यों को ही नियुक्त करना उचित था। इस तर्क में बहुत ज़्यादा वज़न नहीं था, क्योंकि उस समय लार्ड सिन्हा और श्री सकलातवाला—दो भारतीय सदस्य भी ब्रिटिश संसद में थे।

ii) दूसरे अंग्रेज़ सरकार ने घोषित किया कि चूंकि संवैधानिक सुधार के मामले में भारतवासियों में मतैक्य नहीं है, इसलिए किसी भारतीय को इसका सदस्य बनाना संभव नहीं है। वस्तुतः बिर्केनहेड को भय था कि ऐसे मिश्र कमीशन में भारतीय और ब्रिटिश श्रमिक प्रतिनिधियों के बीच गठबंधन हो सकता है।

इर्विन ने घोषणा की कि भारतीयों को कमीशन की सदस्यता से इसलिये वंचित किया गया है क्योंकि वे संसद के सम्मुख शासन करने की अपनी क्षमता का सही चित्र नहीं प्रस्तुत कर सके और उनका मूल्यांकन निष्पक्ष नहीं रह सकेगा। फिर भी मई, 1927 में प्रधानमंत्री बाल्डविन ने घोषणा की कि "आगे आने वाले समय में हम चाहेंगे कि वह (भारत) अधिराज्यों के साथ समानता के स्तर पर संबद्ध हो"। बाल्डविन की घोषणा को ध्यान में रखते हुए इर्विन ने संवैधानिक विकास की समस्या पर भारतीय जनमत की अभिव्यक्ति की व्यवस्था की। इसके अंतर्गत भारत में केंद्र और प्रांतों के ग़ैर-सरकारी सदस्यों की एक संयुक्त समिति को कमीशन के सम्मुख अपना मत प्रस्तुत करना था। भारतीय विधान मंडल कमीशन के प्रतिवेदन पर ब्रिटिश संसद की संयुक्त समिति से विचार विमर्श करने के लिए अपना प्रतिनिधि मंडल भेज सकता है।

29.3.2 बहिष्कार

कमीशन में केवल अंग्रेज़ सदस्यों की नियुक्ति की घोषणा से लगभग सभी भारतवासियों को सदमा पहुंचा। सभी दलों जैसे कांग्रेस, मुस्लिम लीग के एक वर्ग, हिंदू महासभा, लिबरल्स फेडरेशन इत्यादि ने इस घोषणा का प्रबल प्रतिवाद किया, और यह सिद्ध किया कि भारतीय प्रतिनिधित्व के मामले में भारतीय जनमत के लगभग सभी वर्गों में मतैक्य है। उन्होंने स्पष्ट

किया कि वे भारतवासियों और अंग्रेज़ों के शासन के बीच एक गोलमेज़ कान्फ्रेंस की मांग कर रहे थे, न कि केवल एक पूर्णतः अंग्रेज़ कमीशन की। कांग्रेस ने इस बहिष्कार के सहारे असहयोग की भावना को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। भगत सिंह और दूसरे क्रान्तिकारियों ने साइमन कमीशन का इस आधार पर विरोध किया कि भारत के संविधान के निर्माण में केवल भारतीयों को ही बोलने का अधिकार है।

मियां मोहम्मद शफ़ी के नेतृत्व वाली मुस्लिम लीग, मद्रास की जस्टिस पार्टी, सेंट्रल सिख संघ और आल इंडिया अछूत फेडरेशन ने आयोग का विरोध नहीं किया।

साइमन कमीशन 3 फ़रवरी, 1928 को बम्बई पहुंचा, जहां "गो बैक, साइमन" के नारे से उसका स्वागत किया गया। उसके विरोध में हड़ताल का आह्वान किया गया और हज़ारों लोगों ने सड़कों पर एकत्र होकर साइमन कमीशन के विरोध में नारे लगाये। बहिष्कार एक तरह का प्रतिरोध आंदोलन बन गया, जिसे देखकर असहयोग के दिनों की याद ताज़ा हो जाती थी। भीड़ को गोलियों और लाठियों से भी नियंत्रित नहीं किया जा सका।

लाहौर में लाला लाजपत राय के नेतृत्व में आयोजित एक प्रदर्शन पर लाठियां बरसाई गयीं। इस चोट से लालाजी का देहान्त हो गया। लखनऊ में जवाहरलाल नेहरू और गोविंद बल्लभ पंत पर लाठियां बरसाई गयीं। लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला लेने के लिए भगत सिंह के क्रान्तिकारी संगठन ने सहायक पुलिस अधीक्षक सांडर्स की हत्या कर दी।

कमीशन के विरुद्ध जन असंतोष से इस भावना को अभिव्यक्ति मिली कि भारत का भावी संविधान स्वयं जनता द्वारा ही बनाया जाना चाहिए। फ़रवरी, 1928 में कांग्रेस ने एक सर्वदलीय कान्फ्रेंस का आयोजन किया और 19 मई को मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में संविधान बनाने के लिए एक समिति नियुक्त की गयी।

कमीशन ने दो बार (फ़रवरी-मार्च 1928, अक्तूबर 1928, अप्रैल 1929) में भारत का दौरा किया। हर बार उसे बहिष्कार का सामना करना पड़ा। काफ़ी व्यापक दौरे के बाद एक रिपोर्ट तैयार की, जो मई, 1930 में प्रकाशित हुई।

29.4 सर्वदलीय कान्फ्रेंस और नेहरू रिपोर्ट

1927 के मद्रास कांग्रेस अधिवेशन में साइमन कमीशन के बहिष्कार का प्रस्ताव पारित हुआ। कार्यकारिणी समिति को अधिकार दिया गया कि वह दूसरे संगठनों से परामर्श करके भारत के लिए एक संविधान तैयार करे। फ़रवरी, 1928 में एक सम्मेलन में कांग्रेस, मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा, आदि के प्रतिनिधि मिले। यह सर्वदलीय कान्फ्रेंस के नाम से जाना जाता है। डा० एम० ए० अंसारी ने इस कान्फ्रेंस की अध्यक्षता की। यह तय हुआ कि भारत के भावी संविधान के निर्माण में उत्तरदायी स्वशासन वाले पूर्ण अधिराज्य के सिद्धांत को ध्यान में रखा जाना चाहिए। हालांकि 1927 के मद्रास कांग्रेस अधिवेशन में पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता का लक्ष्य अपनाया गया था, लेकिन सर्व-दलीय कान्फ्रेंस में स्व-शासित पूर्ण अधिराज्य को इच्छित लक्ष्य घोषित किया गया। ऐसा इसलिए किया गया ताकि अधिराज्य का लक्ष्य रखने वाले संगठनों को भी एक योजना के अंतर्गत लाया जा सके।

मई, 1928 में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रवादियों ने नेहरू समिति का गठन इसलिए किया था, ताकि वे साइमन कमीशन के गठन और लार्ड बिर्केनहेड की उस चुनौती का जवाब दे सकें, जिसमें उन्होंने भारतवासियों से एक ऐसा संविधान बनाने के लिए कहा था, जिस पर भारत में मतैक्य हो। अगस्त में समिति की रिपोर्ट को अपनाया गया। कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में कहा गया कि इस रिपोर्ट ने भारत की राजनीतिक और सांप्रदायिक समस्याओं को सुलझाने में बहुत बड़ा योगदान दिया है।

समिति की रिपोर्ट ने जिस संविधान की रूपरेखा बनायी थी, वह स्व-शासित अधिराज्यों के संविधान के प्रारूप और पूर्णतः उत्तरदायी शासन के सिद्धान्त पर आधारित थी। पूर्ण

उत्तरदायी सरकार की स्थापना को किसी दूरगामी लक्ष्य के रूप में नहीं, बल्कि तात्कालिक लक्ष्य के तौर पर स्वीकृत किया गया था। स्पष्टतया यह 1919 के ऐक्ट में स्वीकृत क्रमिक प्रगति के सिद्धांत से भिन्न था। इस मसौदे को सामान्यतया नेहरू समिति रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है। इसने निम्नलिखित सिफारिशें कीः

i) भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर दूसरे अधिराज्यों के समकक्ष संवैधानिक दर्जा दिया जाय और संसद को क़ानून बनाने का अधिकार भी हो तथा भारत राष्ट्र मंडल के नाम से जाना जाय।
ii) संविधान नागरिकता को परिभाषित करे और मौलिक अधिकारों की घोषणा करे।
iii) विधायी शक्ति राजा और दो सदनों वाली संसद में निहित हो और कार्यपालिका की शक्ति राजा में निहित हो, जिसका प्रयोग गवर्नर जनरल द्वारा किया जाय। प्रदेशों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के लिए राज्यपालों और कार्यकारिणी परिषदों के संबंध में भी यही प्रावधान लागू किये जायं।
iv) पद-सोपानात्मक (Hierarchy) न्यायपालिका की व्यवस्था की जाय, जिसके शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय हो।

नेहरू समिति को रियासतों का दर्जा तय करने में काफ़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा 1927 में रियासतों के लोगों ने स्व-शासित संस्थाएं स्थापित करने के विचार से स्टेट पीपुल्स कांफ्रेंस का गठन किया। इस कार्रवाई से रजवाड़ों के हितों को चुनौती मिली। इसलिए इन्होंने इस मसले पर ब्रिटिश सरकार से सहायता मांगी। इसके परिणामस्वरूप सर हरकोर्ट बटलर की अध्यक्षता में एक समिति का गठन हुआ जिसने ब्रिटिश सर्वोच्चता के अधीन रियासतों के संरक्षण पर ज़ोर दिया। नेहरू समिति ने बटलर समिति की नियुक्ति की निंदा की। उसने कहा कि सर्वोच्च सत्ता के अधिकारों और दायित्वों को भारतीय राष्ट्र मंडल की सरकार को हस्तांतरित किया जाना चाहिए। और भारतीय राष्ट्रमंडल तथा रियासतों के बीच के झगड़ों को सर्वोच्च न्यायालय के सुपुर्द किया जाना चाहिए।

नेहरू रिपोर्ट ने संघीय प्रवृतियों को वस्तुतः शामिल नहीं किया था। हालांकि सीनेट की संरचना में संघीय सिद्धान्तों को शामिल किया गया था लेकिन उसमें प्रांतीय प्रतिनिधित्व असमान था और इस प्रकार संघीय सिद्धान्त वास्तव में व्यवहार में नहीं लाये गये। विकेंद्रीकरण उसी सीमा में लागू किया गया जो 1919 के ऐक्ट में रखी गयी थी। अवशिष्ट शक्तियां भी केंद्र में निहित थी। केंद्र के साथ रियासतों के संबंधों की स्थिति स्पष्ट नहीं की गयी थी। समिति ने संघीय संविधान की स्थापना का विचार तो किया था, लेकिन इसके लिए उसने ठोस क़दम नहीं उठाये।

रिपोर्ट का महत्व इस तथ्य में था कि इसके ज़रिये सांप्रदायिक समस्या पर भारतीय नेतृत्व के बहुमत के व्यवस्थित विचार को पहली बार अभिव्यक्ति का अवसर मिला। कूपलैंड के अनुसार "इसके ज़रिये भारतीयों ने सांप्रदायिक समस्या का सामना करने के लिये दृढ़ता से खुलकर प्रयास किया"। रिपोर्ट ने बताया कि अल्पसंख्यकों को केवल सुरक्षा उपायों के ज़रिये ही सुरक्षा का अहसास करवाया जा सकता है। इस संदर्भ में समिति ने तीन स्पष्ट प्रस्ताव रखेः

i) प्रस्तावित संविधान में अन्तरात्मा और धर्म की स्वतंत्रता का प्रावधान हो।
ii) आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार मुस्लिम बहुमत वाले प्रदेशों की स्पष्ट रूप से राजनीतिक और सांस्कृतिक आधार पर पहचान की जाय। अभिप्राय यह है कि सिंध को बंबई प्रेसीडेंसी से अलग किया जाय और उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रांत को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया जाय।
iii) पृथक निर्वाचन क्षेत्रों के सिद्धांत को अस्वीकार किया जाय। चुनाव संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों के आधार पर किये जायँ। इसके अंतर्गत केंद्र और राज्यों में, जहां मुस्लिम अल्पसंख्या में हों उनकी सीटें आरक्षित की जांय। उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रांत के ग़ैर-मुस्लिमों को भी यही सुविधा प्राप्त हो।

बाद में समिति ने सांप्रदायिक समस्या के संबंध में दो और सिफारिशें की। सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व पर दस वर्ष बाद पुनर्विचार किया जाय और बलूचिस्तान को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया जाय।

दिसम्बर, 1928 के कलकत्ता के सर्व-दलीय सम्मेलन में जिन्ना ने केंद्रीय विधान मंडल में मुस्लिमों के लिए एक-तिहाई प्रतिनिधित्व की मांग की। सम्मेलन में इस मांग के न माने जाने पर वे आग़ा ख़ान और सर मियां मोहम्मद शफ़ी के गुट में शामिल हो गये। एक जनवरी 1929 को दिल्ली में अखिल भारतीय मुस्लिम कान्फ्रेंस आयोजित की गयी। इसमें दो सिद्धांतों को महत्त्व देते हुए प्रस्ताव पारित किया गया। पहला सिद्धांत यह था कि भारत के एक विशाल देश होने और उसमें अनेक विभिन्नताएं होने के कारण यहां संघीय व्यवस्था वाली सरकार ही उपयुक्त होगी। इसके अंतर्गत राज्यों को पूर्ण-स्वायत्तता और अवशिष्ट शक्तियां हासिल होनी चाहिए। दूसरे सिद्धान्त के अनुसार, जब तक संविधान में मुस्लिमों के अधिकारों और हितों को सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती है, तब तक पृथक निर्वाचन क्षेत्रों को बनाये रखा जाय।

मार्च, 1929 में जिन्ना ने अपनी चौदह मांगे मुस्लिम लीग के सामने प्रस्तुत की। इनमें नेहरू रिपोर्ट को पूरी तरह से अस्वीकार करने का सुझाव दिया गया था। इसके पीछे दो कारण थे।

i) जिन्ना को एकात्मक संविधान इसलिए स्वीकार्य नहीं था कि इससे भारत के किसी भाग में मुसलमानों का बाहुल्य सुनिश्चित हो सकेगा। दूसरी तरफ़ संघीय संविधान में, जिसमें केंद्र के पास सीमित शक्तियां और स्वायत्त प्रदेशों के पास अवशिष्ट शक्तियां हों तो उत्तर पश्चिमी सीमाप्रांत बलूचिस्तान, सिंध, बंगाल और पंजाब, इन पांच प्रांतों में मुसलमानों का प्रभुत्व हो सकता था।
ii) सांप्रदायिक समस्या के समाधान के लिए नेहरू रिपोर्ट द्वारा दिये गये सुझाव मुसलमानों को स्वीकार नहीं थे। जिन्ना पृथक निर्वाचन क्षेत्रों को समाप्त करने के पक्ष में नहीं थे।

जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्त्व में युवा-वर्ग ने नेहरू रिपोर्ट की इसलिए आलोचना की, क्योंकि उसमें अधिराज्य की स्थिति को स्वीकार किया गया था। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता को अपना लक्ष्य बनाया था, जिसका अर्थ ब्रिटिश साम्राज्य से संबंध विच्छेद करना था। इसके बावजूद नेहरू रिपोर्ट ने एक समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाकर अधिराज्य की स्थिति को अपना लक्ष्य स्वीकार किया। इसके ज़रिये एक सामान्य योजना के अंतर्गत सभी दलों को एकजुट किया जा सके। हालांकि किसी एक भाग के विरोध के कारण कलकत्ता कांग्रेस प्रस्ताव (1928) में यह जोड़ा गया कि यदि अंग्रेज़ सरकार नेहरू रिपोर्ट को 31 दिसम्बर, 1929 तक या उससे पहले स्वीकृत नहीं करती है या ठुकरा देती है, तो कांग्रेस फिर एक जुझारू आंदोलन शुरू करेगी। परन्तु लार्ड इर्विन ने स्व-शासित पूर्ण अधिराज्य स्थापित करने की दिशा में कोई रुचि नहीं दिखायी। इसलिए कांग्रेस ने 31 अक्तूबर, 1929 को घोषणा की कि नेहरू रिपोर्ट की प्रमाणिकता को समाप्त कर दिया गया है मंई, 1930 में साइमन कमीशन रिपोर्ट प्रकाशित की गयी। इसने केंद्र में उत्तरदायी सरकार या द्वैध शासन की स्थापना के बारे में कोई सुझाव नहीं दिया। पृथक निर्वाचन क्षेत्रों को सुरक्षित रखा गया और दलित वर्गों के लिए भी सीटों के आरक्षण का प्रस्ताव रखा गया। इसने प्रांतों में द्वैध शासन को समाप्त करके उत्तरदायी एकात्मक सरकार स्थापित करने का सुझाव दिया। इसने केन्द्र के बारे में कहा कि भारत की भिन्नताओं को देखते हुए यहां संघीय व्यवस्था को ही लागू किया जाना चाहिए। इसमें केंद्र में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के प्रश्न को अनिश्चित काल के लिए स्थगित किया गया अधिराज्य के दर्जे (डामीनियन स्टेटस) के बारे में साइमन कमीशन का दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट नहीं था। उसने सिफारिश की कि भविष्य में ब्रिटिश भारत और रियासतें जो एक संघीय संस्था के रूप में हैं, स्थापित होना चाहिये, लेकिन ब्रिटिश प्रभुता का प्रावधान (जिसमें वाइसरॉय सर्वोच्च सत्ता का प्रतिनिधि है) बने रहना चाहिए। इस रिपोर्ट को लगभग सभी भारतीय दलों ने अस्वीकार कर दिया। भारतीय जनता सविनय अवज्ञा आंदोलन में उत्साहपूर्वक हिस्सा लेने लगी।

बोध प्रश्न 1

1 **1927 में साइमन कमीशन की नियुक्ति की पृष्ठभूमि पर विचार कीजिये। लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दीजिये।**

....

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

2 निम्नलिखित वक्तव्यों में सही वक्तव्य को चिन्हित (√) कीजिए।
साइमन कमीशन के गठन के समय:
क) बाल्डविन ब्रिटिश राज्य-सचिव थे ☐
ख) बिर्केनहेड ब्रिटिश प्रधानमंत्री थे ☐
ग) इर्विन भारत के वाइसरॉय थे ☐
घ) श्रमिक दल ब्रिटेन में सत्तारूढ़ था ☐

3 नेहरू रिपोर्ट की मुख्य सिफारिशों को गिनाइये, लगभग पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

29.5 पहली गोलमेज़ कान्फ्रेंस

साइमन कमीशन के रिपोर्ट प्रस्तुत करने के पहले ही इंग्लैंड में लेबर पार्टी की सरकार बन गयी। लार्ड इर्विन ने अक्टूबर, 1929 की घोषणा में कहा था कि लंदन में एक गोलमेज़ कान्फ्रेंस के ज़रिये भारतीय राजनीतिक मत के विभिन्न दृष्टिकोणों को जानने के पश्चात् लेबर सरकार एक नया संविधान बनायेगी।

आगे चलकर लंदन में गोलमेज़ कान्फ्रेंस के तीन सत्र आयोजित किये गये। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पहले और तीसरे सत्र में भाग नहीं लिया। जिस समय पहली गोलमेज़ कान्फ्रेंस की तैयारियां हो रही थीं, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ रखा था। दूसरी तरफ़ सर तेज बहादुर सप्रू और एम० आर० जयकर कान्फ्रेंस में भाग लेने के इच्छुक थे। यह सभी को स्पष्ट था कि कांग्रेस की भागेदारी के बिना कोई भी संधि वार्ता और समझौते सफल नहीं हो सकते। सरकार चाहती थी कि कांग्रेस उसमें हिस्सा ले। सरकार के प्रयासों और उदारवादियों के अनुरोधों के जवाब में कांग्रेस ने कान्फ्रेंस में शामिल होने की कुछ शर्तें रखीं जैसे कि भारतीय अधिकार को मान्यता दी जाय कि वह इच्छा होने पर साम्राज्य से अलग हो सके और केंद्र तथा प्रदेश में पूर्णतः उत्तरदायी सरकार स्थापित की जाय। लेकिन ये शर्तें अंग्रेज़ सरकार को स्वीकार नहीं थीं। इस तरह पहली कान्फ्रेंस कांग्रेसी प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति में 12 नवंबर, 1930 को आरम्भ हुई।

चित्र 3. एम० आर० जयकर

कान्फ्रेंस में कुल मिलाकर 89 व्यक्तियों को आमंत्रित किया गया था। इनमें से 16 व्यक्ति ब्रिटिश राजनीतिक पार्टियों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधि मण्डल

में 58 सदस्य थे, जो कांग्रेस के अलावा भारत की तमाम पार्टियों और हितों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

उनमें से कुछ प्रमुख भारतीय जिन्होंने भाग लिया, वे थे—

- हिन्दू महासभा के एम० आर० जयकर और बी० एस० मुंजे, उदारवादियों की ओर से सी० वाई० चिन्तामणि और टी० बी० सप्रू।
- आग़ा ख़ान, मोहम्मद शफ़ी, मोहम्मद अली, फ़ज़ूल-उल हक़। मोहम्मद अली जिन्ना (मुस्लिम राजनीतिक विचारों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे)।
- सिखों के प्रवक्ता सरदार सम्पूरन सिंह थे।
- दलित वर्गों की ओर से बी० आर० अम्बेडकर।
- भारतीय ईसाइयों की ओर से के० टी० पॉल।

इसके अतिरिक्त एंग्लोइंडियन व्यापारिक हितों को भी प्रतिनिधित्व मिला था। देशी रियासतों और उनके नामांकित प्रतिनिधियों की संख्या 16 थी। इनमें अलवर, बड़ौदा, भोपाल, बीकानेर, कश्मीर, पटियाला, हैदराबाद, मैसूर और ग्वालियर की रियासतों के प्रतिनिधि प्रमुख थे।

परन्तु कान्फ्रेंस में प्रख्यात नेता, महत्वपूर्ण व्यक्ति और देशी रजवाड़े शामिल थे, इसमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जिसे कि भारतीय जनता का प्रतिनिधि माना जा सके, जबकि यह कान्फ्रेंस भारतीय जनता के भाग्य का फैसला करने के लिए आयोजित हुई थी। संवैधानिक सुधारों की दृष्टि से इस बाधा के बावजूद, कान्फ्रेंस ने दो सकारात्मक पहलुओं पर अच्छा काम किया उसने ब्रिटिश भारतीय प्रदेशों और भारतीय रियासतों का एक अखिल भारतीय संघ बनाये जाने का सुझाव दिया। उसने केन्द्र में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की सिफारिश की जिसमें संक्रमणकाल में कतिपय सुरक्षा उपायों का प्रावधान भी था। राष्ट्रवादियों को इस बात से निराशा अवश्य हुई कि संक्रमण काल की अवधि निर्धारित नहीं की गयी थी।

गोलमेज़ कान्फ्रेंस को देखकर उसमें साम्प्रदायिक और प्रतिक्रियावादी तत्त्वों के जमावड़े का स्पष्ट आभास होता था। कांग्रेस की कान्फ्रेंस में हिस्सेदारी के लिए प्रधानमंत्री रैम्ज़े मैक्डोनाल्ड और भारत के वाइसरॉय ने भारतीय नेताओं को बिना शर्त रिहा कर दिया ताकि वे लोग अस्वस्थ नेता मोतीलाल नेहरू के घर पर मिल सकें और आगामी गोलमेज़ कान्फ्रेंस में कांग्रेस के भाग लेने की शर्तें तय कर सकें।

29.6 गांधी और दूसरी गोल मेज़ कान्फ्रेंस

इस तथ्य के बावजूद कि शासन के रवैये में कोई ख़ास बदलाव नहीं आया था, गांधी जी ने 5 मार्च, 1931 को गांधी-इर्विन समझौते के नाम से विख्यात, एक समझौता करके, दूसरी गोल मेज़ कान्फ्रेंस में भाग लेने का फैसला किया। इस अवधि में क्रान्तिकारी आतंकवाद अपने चरमोत्कर्ष पर था और कम्युनिस्ट मज़दूरों को संगठित होने तथा हड़ताल के लिए प्रेरित कर रहे थे। अराजकता की आशंका से गांधीजी को इर्विन के साथ यह समझौता करना पड़ा।

कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आदोलन स्थगित कर दिया और यह तय किया कि गांधीजी दूसरी गोलमेज़ कान्फ्रेंस में कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि और प्रवक्ता रहेंगे। कांग्रेस ने फिर से घोषणा की कि पूर्ण स्वराज उसका अन्तिम राजनीतिक लक्ष्य है।

इस बीच परिस्थितियों में काफ़ी बदलाव आ गया था। 26 अगस्त, 1931 को मैक्डोनाल्ड के लेबर मंत्रिमंडल ने त्याग-पत्र दे दिया और उसके स्थान पर अनुदारवादियों के प्रभुत्व वाली एक साझा सरकार बनी। अप्रैल, 1931 में लार्ड इर्विन के स्थान पर दिल्ली में वेलिंग्डन वाइसरॉय बनाये गये। एक प्रमुख अनुदारवादी सर सैमुअल मोरे को भारत का राज्य सचिव बनाया गया। इन परिवर्तनों के कारण सरकारी दृष्टिकोण कठोर हो गया। पहले सत्र के

अधिकांश प्रमुख प्रतिनिधियों ने दूसरे सत्र में भी भाग लिया। सत्र में कुछ नये प्रतिनिधि भी थे। उसमें गांधीजी के अलावा मोहम्मद इक़बाल जैसे महान् शायर, मदन मोहन मालवीय, श्रीमती सरोजिनी नायडू और अली इमाम जैसे महान राजनीतिक नेता और राष्ट्रवादी, जी० डी० बिड़ला जैसे पूंजीपति और एस० के० दत्ता जैसे प्रख्यात भारतीय ईसाई भी थे। ये लोग कान्फ्रेंस में पहली बार शामिल हो रहे थे। दूसरा सत्र 1 दिसंबर, 1931 को समाप्त हुआ और उसने निम्नलिखित सिफ़ारिशें कीं।

- भारतीय संघ की संरचना,
- संघीय न्यायपालिका का ढांचा,
- राज्यों द्वारा संघ में सम्मिलित होने की पद्धति, और वित्तीय संसाधनों का वितरण।

गांधीजी द्वारा प्रस्तुत योजना नेहरू-समिति द्वारा अपनी रिपोर्ट में दिये गये सुझावों का ही दूसरा रूप था। कान्फ्रेंस की कार्रवाई में साम्प्रदायिक मुद्दों से काफी अड़चन आयी। गांधीजी इस तथ्य से परिचित थे कि साम्प्रदायिक समस्या इतनी जटिल है कि उसका कोई तात्कालिक समाधान संभव ही नहीं है। उन्होंने सुझाव दिया कि पहले संवैधानिक समस्या का समाधान करने के बाद ही साम्प्रदायिक मामलों पर विचार किया जाय। इस सुझाव ने अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों को न केवल असंतुष्ट किया बल्कि उनके रवैये को भी कठोर कर दिया। मुस्लिम प्रतिनिधियों ने पृथक निर्वाचन क्षेत्र बनाये रखने पर ज़ोर दिया। दूसरा सत्र कटुता और क्षोभ के माहौल में समाप्त हुआ।

29.7 साम्प्रदायिक पंचाट और पूना समझौता

राष्ट्रीय आंदोलन की ताज़ा लहर की आशंका से व्यग्र होकर सरकार ने गांधीजी को 4 जनवरी, 1932 अर्थात् उनके भारत पहुंचने के एक हफ्ते बाद ही गिरफ़्तार कर लिया और आतंक फैल गया। साम्प्रदायिक समस्या ने देश का ध्यान अपनी ओर खींचा। इस मसले पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक निश्चित योजना प्रस्तुत की, जिसका वैचारिक रुझान सरकार विरोधी था। कांग्रेस ने दोहराया कि प्रस्तावित संविधान के मौलिक अधिकारों में अल्पसंख्यकों की संस्कृति, भाषा और धर्म के संरक्षण की गारंटी होगी। उसने पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों को अस्वीकृत किया और सार्वजनिक मताधिकार के सिद्धांत का समर्थन किया। लेकिन इसी बीच 16 अगस्त, 1932 को मैक्डोनाल्ड ने 'साम्प्रदायिक पंचाट' नाम से प्रसिद्ध अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व का एक प्रस्ताव प्रस्तुत कर दिया। इसमें निम्नलिखित सिफ़ारिशें की गयीं:

i) प्रान्तीय विधानमंडलों की मौजूदा सीटों को दुगुना किया जाय।
ii) अल्पसंख्यकों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था को बनाये रखा जाए।
iii) मुस्लिमों को उन प्रदेशों में, जहां वे अल्पमत में हैं, अतिरिक्त सीटें मिलें।
iv) उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत को छोड़कर, शेष सभी प्रान्तीय विधानमंडलों में महिलाओं के लिए 3% का आरक्षण हो।
v) दलित वर्गों को अल्पसंख्यक समुदाय के तौर पर मान्यता मिले और उन्हें पृथक निर्वाचन क्षेत्र का अधिकार प्राप्त हो, और
vi) श्रमिकों, ज़मीदारों, व्यवसायियों और उद्योगपतियों को सीटें, आबंटित की जायं।

गांधीजी ने दलित वर्गों को पृथक निर्वाचन क्षेत्र का अधिकार देने के प्रस्ताव पर बहुत तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। वे दलित वर्गों को हिन्दू समाज का अविच्छिन्न अंग मानते थे। उन्हें यह आशा थी कि हिन्दू समाज दलितों के कल्याण के लिए काम करेगा तथा शताब्दियों तक शोषित समाज के इस तबके के साथ सामाजिक न्याय करेगा जिससे कि वह हिन्दू समाज में पूरी तरह समाहित हो सके। अम्बेडकर पृथक निर्वाचन क्षेत्र के पक्ष में थे। गांधीजी ने उनको अपने पक्ष में लाने के लिए सरवदा जेल में आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। अम्बेडकर ने उनके प्राण बचाने की इच्छा से 25 सितम्बर, 1932 को एक समझौता किया। इस पूना-समझौते में निम्न मुख्य बातें थी :

i) प्रान्तीय विधानमंडलों में दलित वर्गों के लिए 198 सीटें आंबटित की गयीं जबकि साम्प्रदायिक पंचाट में उन्हें 71 सीटें प्रदान करने का वचन दिया गया था।
ii) यह वादा किया गया कि ग़ैर-मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्रों को आंबटित सीटों का एक निश्चित प्रतिशत दलित वर्गों के लिए आरक्षित कर दिया जायेगा।
iii) कांग्रेस ने स्वीकार किया कि दलित वर्गों को प्रशासनिक सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान किया जायेगा।
iv) अम्बेडकर के प्रतिनिधित्व में दलित वर्गों ने संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया।

चित्र 4. डा० बी० आर० अम्बेडकर

29.8 गवर्नमेंट आफ़ इंडिया ऐक्ट 1935

तीसरी गोल मेज़ कान्फ्रेंस के बाद भारत के नये संविधान पर एक श्वेत पत्र तैयार किया गया। अग्रेज़ सरकार के द्वारा तैयार किये गये इस श्वेत पत्र में तीन प्रमुख प्रस्ताव थे, जो संघशासन, प्रान्तीय स्वायत्तता और केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कार्यपालिका को विशेष अधिकार देने वाले उपायों से सम्बंधित थे। चूंकि यह प्रस्ताव पूर्ण स्वतंत्रता से बहुत पीछे था इसलिए भारत के सभी राजनैतिक दलों ने इस श्वेत पत्र की आलोचना की और उसे अस्वीकार कर दिया। इसे मार्च 1933 में प्रकाशित किया गया और दोनों सदनों की संयुक्त संसदीय समिति के विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। संयुक्त समिति ने 22 नवम्बर, 1934 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट के आधार पर 2 अगस्त 1935 को एक विधेयक पारित किया गया। राजकीय स्वीकृति पाने के बाद इसने गवर्नमेंट आफ़ इंडिया ऐक्ट 1935 का रूप लिया।

इसमें प्रांतों से संबंधित निम्नलिखित महत्वपूर्ण बातें थीं :

- प्रान्तीय स्वायत्तता की शुरुआत। पहली बार ऐक्ट ने प्रांतों को एक पृथक वैधानिक इकाई के तौर पर मान्यता दी। इसकी व्यवस्था इस तरह से की गयी थी कि कुछ विशिष्ट क्षेत्रों को छोड़कर सामान्यतया प्रांतों को केन्द्र सरकार के नियंत्रण से मुक्ति मिल सके।
- 1919 के ऐक्ट द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया।
- बर्मा को भारत से अलग कर दिया गया। ऐक्ट ने सिंध और उड़ीसा में दो नये प्रान्त बनाने की सलाह दी। 3 मार्च, 1936 को इस संबंध में आदेश जारी किये गये।
- ऐक्ट ने सिंध और उड़ीसा समेत सभी ग्यारह प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना का प्रावधान किया। इनमें से बम्बई, बंगाल, मद्रास, संयुक्त प्रान्त, बिहार और असम में द्विसदन विधानमंडलों की व्यवस्था की गयी थी।
- मताधिकार सम्पति की योग्यता पर आधारित था। 1935 में मतदाताओं की संख्या 1919 के 50 लाख से बढ़कर 3 करोड़ हो गयी।
- सीटों के आबंटन के सिद्धान्त में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। पृथक निर्वाचन क्षेत्र तथा कुछ को अधिक महत्व दिये जाने की व्यवस्था को बनाये रखा गया।
- प्रान्तों के गवर्नर को विशेष कार्यकारी अधिकार प्रदान किये गये। उन्हें न्याय-व्यवस्था, अल्पसंख्यकों और पिछड़े वर्गों के हितों और ब्रिटिश व्यवसायिक हितों के संरक्षण के लिए अपना विवेक प्रयुक्त करने का अधिकार था।

ऐक्ट ने भारत सरकार के लिए संघीय ढांचे की व्यवस्था की थी। इसमें प्रांतों और रियासतों के साथ संघीय केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधानमंडलों की व्यवस्था थी। केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना की गयी। विदेशी मामलों और प्रतिरक्षा को गवर्नर जनरल के लिए आरक्षित कर दिया गया था। निर्वाचित मंत्रियों को हस्तान्तरित किये गये विषयों में रक्षा उपाय उनके सुपुर्द किये गये थे।

केन्द्रीय विधानमंडल में दो सदनों की व्यवस्था थी। राज्य सभा, अर्थात् उच्च सदन में ब्रिटिश भारत से 156 सदस्य और भारतीय रियासतों से 104 सदस्य शामिल किये गये। 1935 के ऐक्ट के द्वारा अधिराज्य की स्थापना नहीं हुई थी। इसलिए ऐक्ट में उत्तरदायी सरकार से

पूर्ण स्वाधीनता में संक्रमण के अंतरिम काल के लिए व्यवस्था की गयी थी और सुरक्षा उपायों तथा विशिष्ट दायित्वों की व्यवस्था भी इसी संक्रमण काल के लिए की गयी थी।

1935 का ऐक्ट संघशासन और संसदीय व्यवस्था के दो आधारभूत सिद्धान्तों पर आधारित था। यद्यपि इस संघ सिद्धांन्त में एकात्मकता पहले से ही मौजूद थी तो भी प्रान्तों की स्थिति अधीनस्थ सत्ता की न होकर सहकारी सत्ता की थी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सुरक्षा उपायों और विशिष्ट दायित्व के प्रावधानों से केन्द्रीय और प्रान्तीय कार्यकारी अध्यक्षों को असाधारण शक्तियां मिल गयी थीं। इन प्रावधानों से संघीय चरित्र गम्भीर रूप से विकृत हो गया। एक महत्वपूर्ण बात यह भी थी कि केन्द्र में पूर्ण उत्तरदायी सरकारों की स्थापना नहीं की गयी थी। इसी तरह से ऐक्ट द्वारा प्रस्तावित प्रान्तीय स्वायत्तता पर भी गम्भीर सीमाएं लगा दी गयी थीं। भारत के लिए अधिराज्य अभी भी एक सुन्दर स्वप्न ही था। सुरक्षा उपायों को शामिल करने के पीछे चतुर संवैधानिक चाल ही थी ताकि एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना को टाला जा सके। यद्यपि इन प्रावधानों को केवल संक्रमण काल तक के लिए रखा गया था, लेकिन इस संक्रमण की अवधि को स्पष्ट नहीं किया गया था।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सुरक्षा उपायों के प्रावधान और संक्रमण के विचार को अस्वीकार कर दिया। उसे सन्देह था कि इसके पीछे खतरनाक इरादे छिपे हुए हैं और उनका राष्ट्रीय आन्दोलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना लाज़मी है। कांग्रेस ने ऐक्ट की इस आधार पर आलोचना की और उसे ठुकरा दिया क्योंकि इसके निर्माण के दौरान भारतीय जनता से सलाह नहीं ली गयी और इसी कारण यह उनकी इच्छाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। कांग्रेस ने सरकार पर आरोप लगाया कि उसने ऐक्ट को इस तरह बनाया है, ताकि उत्तरदायी सरकार को टाला जा सके, अपने शासन को स्थायी बनाया जा सके और भारतीय जनता का शोषण किया जा सके। उत्तरदायी सरकार के प्रति भारतीयों की अभिलाषाओं को मान्यता देने के बावजूद 1935 का यह ऐक्ट उनकी इच्छाओं को पूरा नहीं करता। सरकार ने सभी वयस्कों को मताधिकार प्रदान नहीं किया। सम्पत्ति की योग्यता, पृथक निर्वाचन क्षेत्र की व्यवस्था और सुरक्षा उपायों के प्रावधानों से जनता के लोकतांत्रिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ। इसलिए इस ऐक्ट को ग़ैर लोकतांत्रिक, जनता के प्रभुत्व को नकारने वाला और संस्थागत रूप से अव्यवहारिक बताकर निन्दित किया गया। उदारवादियों ने भी इस ऐक्ट की आलोचना की थी, लेकिन वे सुधारों को उत्तरदायी सरकार बनाने की दिशा में अग्रसर मानकर लागू करवाना चाहते थे। मुस्लिम लीग ने भी ऐक्ट की आलोचना की थी लेकिन फिर भी वे उसे एक अवसर देना चाहते थे। कुल मिलाकर कांग्रेस ने ऐक्ट की निन्दा की थी लेकिन उन्हें यह भी लग रहा था कि उसे प्रांतीय स्तर पर ऐक्ट को स्वीकार करना पड़ सकता था, यद्यपि ऐसा विरोध जताते हुए ही करना था।

इस तरह कांग्रेस ने 1937 के चुनावों में भाग लिया और आगे चलकर प्रांतीय मंत्रिमंडलों का गठन किया।

बोध प्रश्न 2

1 पूना समझौते के मुख्य प्रावधान क्या थे? लगभग चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

2 निम्नलिखित वक्तव्यों में से सही वक्तव्य को चिन्हित (√) कीजिए :

क) प्रथम गोल मेज़ कान्फ्रेंस के लिए कांग्रेस से महात्मा गांधी मनोनीत किये गये थे। ☐

ख) कांग्रेस ने तीसरी गोलमेज़ कान्फ्रेंस में भाग लिया था। ☐

ग) पूना समझौता गांधी और अम्बेडकर के बीच हुआ था। ☐

घ) साम्प्रदायिक पंचाट का उद्देश्य अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व को समाप्त करना था। ☐

3 भारत सरकार ऐक्ट, 1935 की मुख्य विशेषताओं का विवरण लगभग दस पंक्तियों में दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

29.9 सारांश

हमने इस इकाई में देखा कि किस तरह 1920-1935 के बीच संवैधानिक सुधारों के मामलें में कुछ प्रगति हुई थी। अंग्रेज़ सरकार का सुधारों के बारे में अपना अलग मत था, जिसे भारतीय राष्ट्रवादियों ने चुनौती दी। फिर भी भारतीयों में उदारवादियों जैसे कुछ वर्ग थे, जो अंग्रेज़ों के द्वारा प्रस्तावित तरीके से ही सुधारों के साथ आगे बढ़ने के पक्ष में थे। राष्ट्रवादियों ने इन सुधारों को सशर्त समर्थन दिया। इसकी वजह से उन्हें अंग्रेज़ों के सामने स्वतंत्रता की अपनी मांग पर किसी क़िस्म का समझौता नहीं करना पड़ा। इसी दृष्टिकोण से हम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर संविधानवादियों के रवैये को समझ सकते हैं। राष्ट्रवादी शक्तियों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व और देशी रियासतों की स्थिति जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ा। फिर भी, सारी सीमाओं के बावजूद इन संवैधानिक सुधारों ने भारत को संसदीय लोकतंत्र की ओर अग्रसर करने में सहायता पहुंचायी।

29.10 शब्दावली

अधिराज्य (डामीनियन स्टेटस) : एक ऐसी शासन व्यवस्था जिसके अनुसार औपनिवेशिक शक्ति किसी देश को स्व-शासन प्रदान करती है, लेकिन वह देश औपनिवेशिक शक्ति के प्रति निष्ठावान बना रहता है।

द्वैध शासन : शासन का एक ढंग जिसमें राज्य को कार्यों के दो भागों में बांट दिया जाता है। इस प्रसंग में शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे विषयों को निर्वाचित प्रतिनिधियों के पास हस्तान्तरित कर दिया जाता है जबकि वित्त, विधि और व्यवस्था जैसे विषयों को शासकीय गुट के लिए आरक्षित कर दिया जाता है।

परिवर्तन विरोधी : कांग्रेस के भीतर नेताओं का एक समूह, जो परिषदों में शामिल होने का विरोध करता था।

पृथक निर्वाचन क्षेत्र : निर्वाचन क्षेत्रों को धर्म, समुदाय आदि के आधार पर आंबटित करना।

29.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 आपके उत्तर में इन बातों का समावेश होना चाहिए : 1919 के अपर्याप्त सुधारों से राष्ट्रवादियों का असंतोष, स्वराजवादियों की राजनैतिक गतिविधियों, क्रान्तिकारी आतंकवाद का विकास, ब्रिटेन की राजनैतिक स्थिति, इत्यादि।

2 (ग)

3 आपके उत्तर में इन बातों का समावेश होना चाहिए : भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर अधिराज्य (डामीनियन स्टेटस) का दर्जा प्राप्त होना चाहिए, संविधान में नागरिकता की परिभाषा और मौलिक अधिकारों की घोषणा होनी चाहिए, इत्यादि।

बोध प्रश्न 2

1 आपके उत्तर में इन बातों का समावेश होना चाहिए : प्रान्तीय विधानमंडलों में दलित वर्गों के लिए सीटें आरक्षित होनी चाहिए, दलित वर्गों को प्रशासनिक सेवा में प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाना चाहिए, इत्यादि।

2 (ग)

3 आपके उत्तर में इन बातों का समावेश होना चाहिए : ऐक्ट ने प्रान्तीय स्वायत्तता को लागू किया, प्रान्तों में इस ऐक्ट के द्वारा द्वैध शासन को समाप्त किया गया, इसने भारत सरकार के लिए संघीय ढांचे का प्रस्ताव रखा।